गीता की विषयवस्तु

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय

गीता के प्रथम अध्याय में कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में अर्जुन ने योद्धाओं का सर्वप्रथम निरीक्षण किया। तत्पश्चात् अर्जुन ने युद्धाभिमुख अपने निकट सम्बन्धियों, गुरुओं तथा मित्रों को युद्ध में अपने-अपने जीवनोत्सर्ग के लिए खड़े तत्पर देखा। उन्हें इस स्थिति में देखकर पार्थ करुणा एवं शोक से अभिभूत हो जाता है। उसकी देह शिथिल और मन प्राण मोहग्रस्त हो गये। उसी क्षण वह युद्ध करने का अपना संकल्प तोड़ देता है। वह कहता है कि अब मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं रुक सकता। मैं अपने को भूल रहा हूँ। मेरा सिर चकरा रहा है। मेरी सारी देह कांप रही है। रोंगटे खड़े हो गये हैं। गाण्डीव हाथ से सरक रहा है, त्वचायें जल रहीं हैं। मैं अब युद्ध नहीं करूंगा।

द्वितीय अध्याय में अर्जुन कर्तव्याकर्तव्य के विवेचन में अपने को असमर्थ पाकर श्रीकृष्ण के शरणापन्न होकर कहता है- साधि माम् । श्रीकृष्ण ने उससे नश्वर भौतिक शरीर तथा अविनश्वर आत्मा के मूलभूत अन्तर की व्याख्या करते हुए अपना उपदेश प्रारम्भ किया। पुनः श्रीकृष्ण ने उसे देहान्तरण की प्रक्रिया, ब्रह्मविद्या की निष्काम सेवा तथा स्वरूपसिद्धि अर्थात् स्थितप्रज्ञ की परिभाषा समझाई। स्थितप्रज्ञ की स्थिति को ही ब्राह्मी स्थिति भी कहा जाता है। इसकी व्याख्या करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा- अनासक्त भाव से कर्म करने की आदत एवं आत्मा को अविनाशी समझने की स्थिर बुद्धि से ही स्थितप्रज्ञ की स्थिति स्वतः उत्पन्न हो जाती है। यही ब्राह्मी स्थिति का अभ्यास है।

तीसरे अध्याय में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को 'कर्मयोग' का उचित स्वरूप समझाया इस परिवर्तनशील संसार का जीवनाधार कर्म ही है। इस भौतिक संसार में व्यक्ति को लोकहित या आत्मरक्षार्थ किसी न किसी प्रकार के कर्म में प्रवृत्त होना ही पड़ता है। यही कर्म व्यक्ति के लिए सांसारिक बन्धन या मोचन का कारण बनता है। अहंकारवश स्वयं को कर्ता समझने की भूल किये

बिना, गुणों के द्वारा कर्म-सम्पादन के अर्थ को समझते हुए कर्तव्य कर्म को अनासक्त भाव से करते हुए कर्मफल का ईश्वरार्पण करते रहना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने भक्त अर्जुन को आत्मा-परमात्मा तथा इन दोनों से सम्बद्ध दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया है। दिव्य ज्ञान आत्मशुद्धि और मोक्ष बुद्धि प्रदान करने वाला है। अनासक्ति के कारण कर्म में अकर्म देखने की विधि का बोध कर्मयोग का ही फल है। विभिन्न कर्तव्यों तथा अनुपम ज्ञान, गीता के प्राचीन इतिहास, धरती पर बार-बार ईश्वरावतार की महत्ता का विश्लेषण तथा गुरुगृह जाने की आवश्यकता का वर्णन किया गया है। इसी दिव्य ज्ञान का वर्णन इस अध्याय की प्रमुख विशेषता है।

पञ्चम अध्याय में कर्मयोग के लाभ तथा कर्तव्य मार्ग की पृथक् विधियों का और ब्रह्मानुभूति की स्थिति के स्वरूप का वर्णन है। ज्ञानी पुरुष अपने दिव्य ज्ञान की अग्नि में शुद्ध होकर बाह्यतः अपने समस्त कर्मों का सम्पादन करता है, किन्तु अन्तर में उन समस्त कर्मों के फल का त्याग करते हुए शान्ति, विरक्ति, सहिष्णुता, आध्यात्मिक दृष्टि तथा आनन्द की प्राप्ति करता है।

षष्ठ अध्याय में ध्यानयोग की विशिष्टता का वर्णन है। सर्वयोग अर्थात् अष्टांगयोग मन तथा इन्द्रियों को नियन्त्रित करता है, ध्यान को परमपिता परमेश्वर पर केन्द्रित करता है, फिर योगसाधना का स्वरूप, योगियों के प्रकार-चतुष्टय, योग की विधियाँ, योग की उपलब्धि और योग को जीवात्मा और परमात्मा का मिलन समझकर परम पुरुषार्थ मान का वर्णन तथा ध्यानविधि की अन्तिम परिणति-समाधि का विश्लेषण करना है।

सप्तम अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण के समस्त कारणों का कारण तथा परम सत्य के स्वरूप का वर्णन है। महात्मागण भक्तिपूर्वक जहाँ एक ओर उनकी शरण में जाते हैं, वहीं दूसरी ओर अपवित्र जन पूजा के अन्य साधनों की ओर ललकते हैं; क्योंकि प्रकृति और गुणों के द्वारा प्रभु का स्वरूप आवृत बतलाया गया है। फिर प्रभु के अनुग्रह-प्राप्ति के साधन, विभिन्न भक्तों के प्रकार, ज्ञानी की महत्ता एवं ईश्वरीय सत्ता का वर्णन है।

अष्टम अध्याय में भगवत्प्राप्ति के सन्दर्भ में ओजस्वी विचार प्रकट किये गये हैं। इस अध्याय में ईश्वरीय योग और भगवान् के अविकृत और अविकारी स्वरूप का चिन्तन है। यहाँ शरणापन्न भक्तों के कर्तव्य और यथार्थ ज्ञान के स्वरूप का भी वर्णन है। आजीवन अपने सचेष्ट कर्मों का भगवच्चरणों में प्रत्यर्पण और मृत्युकाल में उनका स्मरण परमधाम तक पहुँचाने का सुलभ साधन है।

नवम अध्याय में परम गुह्यज्ञान का बोध कराया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं। अवतारी पुरुष होने के कारण परम पूज्य हैं। इनकी महत्ता का विशेष रूप से वर्णन है। भक्ति के माध्यम से प्राणी परमात्मा से शाश्वत सम्बद्ध है। अपनी सच्ची भक्ति के माध्यम से मनुष्य ईश्वर का सामीप्य सदा के लिए प्राप्त कर सकता है। अवतारी पुरुष होने के कारण मानवरूप में भी श्रीकृष्ण परम ऐश्वर्यशाली हैं।

दशम अध्याय में भगवान् के परम ऐश्वर्य का वर्णन है। ईश्वर की अनन्त विभूतियों, भक्ति की दीक्षा एवं वृद्धि हेतु सब वस्तुओं का ईश्वर पर निर्भर करना जैसे श्लाघ्य गुणों का वर्णन है। बल, सौन्दर्य, ऐश्वर्य, विनयशीलता और भव्यता प्रदर्शित करने वाली समस्त अद्भुत घटनायें, चाहें लौकिक हों या पारलौकिक, आध्यात्मिक हों या अध्यासित; परमात्मा की ही आंशिक अभिव्यक्तियाँ हैं। समस्त कारणों के कारणभूत सर्वस्वस्वरूप श्रीकृष्ण जीवों के बीच परम पूज्य के रूप में वर्णित हैं। भक्तियोग, भक्ति की दीक्षा एवं उनकी वृद्धि हेतु सारी वस्तुओं का ईश्वर पर ही निर्भर होने का विशद् वर्णन है।

ग्यारहवें अध्याय में विभु के विराट् स्वरूप का वर्णन है। यहाँ श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान किया है। विश्वरूप में, विश्व के कण-कण में व्याप्त अपने विशिष्ट रूप का व्यापक प्रदर्शन किया है। इस प्रकार परमात्मा अपनी दिव्यता का प्रदर्शन करते हुए अपनी भव्यता का आख्यान प्रस्तुत किया है। उनका सर्वाधिक आकर्षक मानवरूप ही ईश्वर का आदिरूप है। शुद्ध भक्ति के द्वारा ही कोई इस रूप का दर्शन कर पाता है। विराट् विश्वरूप के माध्यम से यह प्रमाणित किया गया है कि केवल भक्ति के द्वारा ही तत्त्वज्ञान और ईश्वरप्राप्ति सम्भव है।

बारहवें अध्याय में भक्तियोग का विशिष्ट वर्णन है। परमात्मा को पाने का सर्वाधिक और सर्वोच्च साधन भक्तियोग ही है। इस परम पथ का जो अनुसरण करता है, उसमें स्वतः दिव्य गुणों का

समावेश हो जाता है। आगे भक्ति की महत्ता तथा उसे पाने के साधन और उनके विविध प्रकारों का वर्णन किया गया है। आगे चलकर यह भी बतलाया गया है कि ईश्वर की अनुपम प्रसन्नता मात्र अपने भक्तों की भक्ति में ही है।

तेरहवें अध्याय में प्रकृति, पुरुष और चेतना का विश्लेषण है। जो शरीर, आत्मा और परमात्मा के अन्तर को समझ लेता है, उसे इस संसार से स्वतः मुक्ति मिल जाती है। तात्पर्य यह कि इस अध्याय में शरीर का स्वरूप, साक्षात्कार के लिए आत्मशुद्धि, बन्धन का कारण तथा विवेक का वर्णन एवं विश्लेषण है।

चौदहवें अध्याय में कहा गया है कि देहधारी सम्पूर्ण जीव भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के अधीन हैं। इसमें बतलाया गया है कि किस प्रकार ये गुणत्रय– सत्त्व, रज और तम कर्मबन्धन के कारण हैं। हम गुणातीत कैसे बन सकते हैं? ईश्वर ही कैसे दैव का प्रतिष्ठान है? इसका विशद् वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

पन्द्रहवें अध्याय में पुरुषोत्तम योग का विश्लेषण है। इसमें बतलाया गया है कि किस प्रकार पुरुषोत्तम सर्वव्यापक महेश्वर एवं सर्वाधार होने के कारण पुरुषों से एवं प्रकृतिस्थ पुरुषों से भिन्न हैं। जो व्यक्ति इस रहस्य को जान लेता है, वही शरणागत भक्त बन जाता है।

सोलहवें अध्याय में दैवी तथा आसुरी स्वभाव का वर्णन है। इसमें दैवी एवं आसुरी सम्पदा के विभाग का तथा हमारे कर्तव्य कर्मों के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान की आधारशिला की स्थापना करनेवाली शास्त्रीय व्यवस्था का वर्णन है। तात्पर्य यह है कि शास्त्रीय नियमों का अनुपालन किये विना मनमाने ढंग से जीवन व्यतीत करने वाले लोग एवं आसुरी गुणों वाले व्यक्ति को अधम योनि तो मिलती ही है; भवबन्धन की शृङ्खला भी इनके लिए सुरक्षित रहती है। ठीक इसके विपरीत दैवीय गुणों से सम्पन्न शास्त्रानुमोदित मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति निश्चित रूप से आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करते हैं।

सत्रहवें अध्याय में शास्त्र और अशास्त्र में अन्तर बतलाया गया है। कहा गया है कि भौतिक प्रकृति के गुणत्रय से तीन तरह की श्रद्धा उत्पन्न होती है। रजोगुण और तमोगुण में श्रद्धापूर्वक किये

गये कर्मों से अस्थायी फल मिलते हैं, जबकि शास्त्रसम्मत विधि से सतोगुण में रहकर सम्पन्न कर्म हृदय को शुद्ध करते हैं। परमात्मा के प्रति शुद्ध श्रद्धा एवं भक्ति उत्पन्न करने के ये परम कारक है।

अठारहवें एवं अन्तिम अध्याय में संन्यास-सिद्धि का रहस्योद्घाटन किया गया है। इस अध्याय में ईश्वर को सब कर्मों का परम कर्त्ता कहा गया है; फिर आत्मशुद्धि की आवश्यकता पर बल दिया गया है। तदतिरिक्त व्यक्ति के कर्मों के फल का स्वरूप वर्णित है। गीता-प्रवचन का उपसंहार करते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को वैराग्य का अर्थ और मानवीय चेतना तथा कर्म पर प्रकृति के गुणों का प्रभाव समझाया है। उन्होंने ब्रह्मानुभूति, गीता की महिमा तथा इनके चरम निष्कर्ष को भी समझाया है। धर्म का सर्वोच्च मार्ग परमात्मा की परम शरणागति है। यह शरणागति मानव जीवन को पूर्ण प्रकाश से भर देती है, जीवनमुक्त कर देती है। गीता ज्ञान का बीज इस अध्याय में वर्णित है ।

डॉ० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी